शब्द एवम् राग विस्तार

डॉ. पवन राज चौधरी*

राग शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का है इसकी उत्पति र_जू भावे घ_ा इस प्रकार हुई है इस उत्पत्ति से स्पष्ट होता है कि रंजकता से ही राग है, किन्तु राग के अन्य कई अर्थ है जो इस प्रकार है।

(1) "वर्ण, रंग, रं_ाकवस्तु (2) लाल रंग, लालिसा–जैसे बघरः किसलय रागः (अभि० शाकुन्तलम्) (3) लाल रंग, लाल रंग की लाख, महावर रागेण बाला रूप कोमलेन चूत प्रवालोष्ठ मंक्तंचकार (कु०) (4) प्रेम, प्रणयोन्माद, स्नेह, प्रीतिविषयक या काम भावना जैसे–मालिनेडपि राग पूर्णाम् (भामि.) यहाँ इसका अर्थ लाली भी है। अथ भवन्तमन्तरेण की दृशो स्यादृष्टिरागः.घट् चक्षुराग भी। (5) भावना, संकेत, सहानुभूति, हित (6) हर्ष, आन्नद (7) क्रोध रोष (8) प्रियता, सौन्दर्य (9) संगीत के राग (10)संगीत की संगति, संगीत माधुर्य, स्वास्तिगीत रागेण हरिण प्रसन्न हतः (शाकुन्तलम्) अहो रागपरिवाहिणी गीतिः (शाकु•) (11) खेद, शोक (12) लालत ईर्षा।"[1]

इस प्रकार समझ सकते हैं कि राग के कई अर्थ हैं इनका प्रयोग अधिकतर भिन्न भिन्न अर्थों में भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में तथा कालिदास ने अपने काव्य में किया है। संगीत में यह शब्द रंजकता से जुड़ा हुआ है, राग का अर्थ है "संगीत के राग तथा रंजकता" अर्ध के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। राग शब्द परिभाषिक रूप से सर्वप्रथम मतंग की बृहदेशी में प्रयुक्त हुआ है। राग गीति का वर्णन करते समय मंतग ने कश्यप की परिभाषा को उद्घृत किया है। राग की परिभाषा इस प्रकार है।

"चतुर्णमपि वर्णानां योगः रागः+शोभना (?)
स सर्वो दृष्यते येन तेन रागा इति स्मृताः।"[2]

इसी अर्थ को ध्यान में रखकर मतंग ने भी राग परिभाषा को भिन्न.भिन्न रूप मे प्रस्तुत किया है। जो इस प्रकार है :–

"स्वरवर्ण विशेषेण ध्वनिभेदेन या पुनः
रज्यते येन यः कश्यित् सरागः संमतः सताम्।"[3]

***संगीत एवं कला प्रदर्शन इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद**

अर्थात विशिष्ट स्वर वर्ण (गान–क्रिया) से अथवा ध्वनि भेद के द्वारा जो रंजन में समर्थ है वह राग है।

राग शब्द के रूढ़त्व के लिए कल्लिनाथ का कथन है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई राग नही आता तो वह राग उसके लिए रंजक नही परन्तु उस अरंजक राग को भी रूढ़ी के कारण राग ही कहा जाता हैं। रंजकता व्यक्तिपरक नही, अपितु मानव जाति परक है।

"राग शब्दस्य केवलरूढ़त्वं तु येन केनचिद्रागेण यः कश्चन न रज्य ते,
तं प्रतितस्थारऋजकत्वात् अयं रागो मह्यं न रोचते इति।"[4]

इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि स्वर वर्ण से विभूषित ध्वनि की विशिष्ट रचना राग है किन्तु ध्वनि की स्वरवर्ण से विभूषित रचना गीत भी कहा जा सकता है। अर्थात ध्वनि की ऐसी रचना जो र्स्वण वर्ण के साथ जाति के ग्रहांशादि हंस (त्रयोदश) लक्षणों से लक्षित हो तथा खग जो लोगों के चित्त का अनुरंजन करती हो, वह राग है।

हिदुस्तानी संगीत का ढ़ॉचा कोई ऐसी इमारत की तरह नही है जो एक बार निर्मित हो गई सो हो गई। संगीत हमेशा से ही परिर्वतनशील रहा है, तथा इसमें निरन्तर परिर्वतन अपेक्षित है। हिन्दुस्तानी संगीत में राग गायन–वादन संगीत का आधार है। रागों की उत्पत्ति का इतिहास जानने के लिए जब हम इतिहास के पन्ने उलटते हैं तो हम पाते हैं कि बहुत से ऐसे राग है जिनकी उत्पत्ति प्रादेशिक धुनों से अथवा वन्य लोक धुनों से हुई है। कुछ राग ऐसे हैं जिनकी उत्पत्ति विदेशों के संगीत के सम्पर्क से हुई। भारत का दृष्टिकोण हमेशा से ही बहुत विस्तृत रहा है तथा उनका सम्पर्क कई देशों से रहा है फलतः यहाँ की संस्कृति तथा संगीत का आदान प्रदान भारत की सभ्यता तथा संस्कृति के साथ होता रहा है। कुछ राग ऐसे हैं जिनकी उत्पत्ति भरत पश्चात् प्रादेशिक तथा वन्य लोक धुनो से हुई है।

रागों के विकास क्रम को देखते हैं तो हमे ज्ञात होता है कि रागो के विकास में ग्राम रागों का विकास प्रथम हुआ तथा तत्कालीन समय में जाति गायन का प्रचार था, जातियों का सम्बन्ध ग्राम तथा मूर्छना से है तथा इन्हीं जातियों से ग्राम रागों की उत्पत्ति भी कही गई है। "जातिसम्भूत्वाद् ग्रामरागाणाम्"[5] इस प्रकार ग्रामों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें ग्राम राग कहा गया। पंडित भातखण्डे जी का कथन है कि जिन रागाों की उत्पत्ति मुर्छनाओं से होती है उन्हें ग्राम राग कहा जाना उचित है। अतः शाड्.गंदेव के आधार से तथा उपर्युक्त बताए हुए विद्वानों के

कथन से स्पष्ट होता है कि ग्राम राग तथा राग एक ही है जिसका विकास ई॰ स॰ की आरम्भिक शताब्दी में आरम्भ हुआ।[6]

भारतीय परम्परा यह रही है कि जब हम किसी विषय की खोज करते हैं तो उसकी उत्पत्ति को देवी–देवताओं के साथ जोड़ देते हैं। संगीत का जीवन "राग" के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं। राग की उत्पत्ति का सम्बन्ध शिव तथा शक्ति से जोड़ा गया है

"शिवशक्ति समायोगद्रागाणां सम्भवो भवंत्
पन्चास्यात् पन्च रागाः स्युः षष्ठस्तु गिरिजामुखात्।"[7]

शिव तथा शक्ति इन दोनों के योग से राग उत्पन्न हुए। महादेव के पाँच मुखों से पाँच राग छठा राग पार्वती के मुख से निकला।

राग एक भवन की तरह है, जिस प्रकार भवन–निर्माण के लिए अन्य सामग्री जैसे ईंट, पत्थर, गारा आदि की आवश्यकता होती है उसी प्रकार राग रुपी भवन–निर्माण के लिए कुछ तत्वों की आवश्यकता होती है, जिसकी नींव पर राग का रूप स्थिर एवं निश्चित रहता है। राग विस्तार के तत्वों में सर्वप्रथम नाद का स्थान है। नाद के बिना संगीत की कल्पना नहीं की जा सकती, संगीतोपयोगी नाद से ही संगीत जगत् में राग के स्वरुप का निर्माण हुआ है। नाद के विषय में बृहदेद्शीकार ने कहा है. "न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वराः न नादेन बिना नृत्यं तस्मान्ना–दात्मकंजगत। नादरूपः स्मृतो ब्रह्म नादरूपो जनार्दनः। नादरूपा पराशक्ति नदि रूपो महेश्वरः यदुक्तं ब्रह्मणः स्थांन ब्रह्मग्रन्थिश्य यः स्मृतोः तन्मध्ये संस्थितः प्राणः प्राणद्वह्नि समुद्गमः। वह्निमारुत संयोगान्नादः समुपजायते।"[8]

श्रुति तथा स्वर दोनों में परस्पर सम्बन्ध हैं। इसके पश्चात् उत्पन्न होने वाली अनुरणनात्मक (गुँजने वाली) दीर्घ ध्वनि स्वर कहलाती है। कुछ लोगों के अनुसार स्वर श्रुतियों के द्वारा उसी प्रकार अभिव्यक्त है जिस प्रकार अंधकार में स्थित घट इत्यादि के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। उच्च तथा नीच दो स्वरों के मध्य में जो साधारण स्वर होते हैं, उसको स्वार कहते है। संगीत के स्वरों में गन्धार निषाद दो स्वर उदान्त है इत्यादि। स्वर के बिना राग की कल्पना व्यर्थ सी जान पड़ती है राग विस्तार के तत्वों के अन्तर्गत स्वरों का महत्वपूर्ण स्थान है जिसके आधार पर राग का निर्माण होता है उसी रंजक ध्वनि को स्वर कहा जाता है।

सात स्वरों के आधार पर किस प्रकार संगीत की अपार सृष्टि का निर्माण होता है यह समझाने के लिए वर्ण तथा अंलकार का महत्वपूर्ण स्थान है। जाति तथा

राग के लक्षणों में वर्ण ऐसी ही गान–विस्तार शैली का संकेत करता है जिसमें स्वरो का विस्तार प्रस्फूटित होता है।

राग विस्तार के तत्व से सम्बन्धित वर्ण शब्द राग की दृष्टि से व्यापक तथा मौलिक है। वर्ण गाने की क्रिया को कहा जाता है।

"गानक्रियोच्यते वर्ण स तथुर्षा निरूपति।"[9]

वर्ण के बिना राग गायन–वादन असंभव है। तात्पर्य कि वणों के आधार पर ही स्वरों का विस्तार होता है जिससे राग का रुप निखरता है। वणों की संख्या सभी ग्रन्थकारों ने चार ही मानी है हमारे आधुनिक संगीत में भी वणों की संख्या में कोई परिर्वतन नहीं हुआ है। राग में वर्ज्य अवर्ज्य स्वरों का ध्यान रखते हुए सभी वणों की सहायता में राग का विस्तार होता है।

अंलकार को वर्ण आश्रित कहा गया है। अर्थात वर्ण के आधार पर ही अंलकार बनते हैं अंलकारो में स्वरों की नियमित गति रहती है।

"विशिष्ठ वर्ण संदर्भमलंकारं प्रचक्षते।"[10]
क्रमेण स्वर संदर्भमलंकारं प्रचक्षते।"[11]

गीत अंलकारो का निर्माण इन्ही चतुर्विध वणों पर आधारित है, भरत का स्पष्ट कथन है कि इन अंलकारो का प्रयोग यथायोग्य रूप से विभिन्न वणों के अनुकूल किया जाना चाहिए। अंलकार संगीत की शोभा प्रदान करने वाला कहा गया है।

"शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लताविपुष्पेव
अभिभूषितेव स्त्री गीतिरलंकारहोना स्यात्।"[12]

अर्थात अलंकार रहित गीति की वही अवस्था होती है जो चन्द्र के बिना रजनी, जल बिना नदी, पुष्प बिना लता और आभूषणों के बिना कांता की होती है। इससे यह स्पष्ट है कि भरत ने अलंकार को गीति का बाह्य अंलकार मात्र नही माना बल्कि गीति लक्षण माना है जो गीति के साथ सहज और स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है।

आलाप प्राचीन समय से ही हमारे संगीत में प्रयुक्त हुआ है। तान की तरह आलाप का प्रयोग भी राग विस्तार के लिए था जब कोई गायक या वादक अपना गायन व वादन आरम्भ करता है तो राग के अनुसार उसके स्वरों का विलम्बित लय में विस्तार करता है इस प्रकार के विस्तार को ही आधुनिक समय में आलाप कहते हैं। आधुनिक संगीत में भी प्राचीन संगीतज्ञों के समान आलाप–विस्तार गायन–वादन को पूर्ण सम्मान प्राप्त है। राग के भिन्न–भिन्न

प्रकारों जैसे ध्रुपद ख्याल आदि प्रचार के साथ उनमें आलाप गायन व वादन ने अपना स्थान बनाया है। कोई राग गाने या बजाने से पूर्व अर्थात राग के आरम्भ में राग विस्तार प्रस्तुत किया जाता है। पश्चात् ख्याल की बंदिश तथा उसके पश्चात् बंदिश का मुखड़ा गाकर और बजाकार भिन्न–भिन्न प्रकार से आलाप–विस्तार प्रस्तुत किया जाता है।

सामान्यतः आलाप–विस्तार करने का आधुनिक संगीत में साधारण गायक या वादक के लिए कोई विशेष कठोर नियम नहीं है। षड़ज् की स्थापना करके राग के स्वरों के अनुसार अपनी अपनी तालीम के अनुसार गायक और वादन स्वरो का विस्तार करते हैं। आलाप–राग विस्तार गायन–वादन राग में ताल के साथ (ख्याल आदि में) भी होता है तथा ताल के बिना भी, किन्तु आलाप–विस्तार राग का महत्वपूर्ण भाग है जिससे राग रूप स्पष्ट होता है।

"षड्जर्षभ–गन्धार मध्यम–पञ्चम धैवत निषादाः
परस्परेण तन्यत्र इति तान संज्ञा लभन्ते।"[13]

अर्थात सप्त स्वरों का जब परस्पर विस्तार किया जाता है तब उसे तान कहते हैं। राग में तान, विस्तार का एक सबल साधन है इसलिए उसका यह नाम सार्थक है। आधुनिक संगीत में राग के विस्तार के लिए विविधता दिखाने के लिए तथा नई–नई स्वर रचना और संयोगो द्वारा गायन व वादन की सजावट के लिए आलाप–स्वर विस्तार, तानो का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार आलाप–स्वर विस्तार तान राग के साथ जुड़ी हुई है।

संदर्भ

1. वी.एच. आरते, संस्कृत हिन्दी शब्द कोश पृ. सं. 85।
2. बृहदोशी पृ. सं. 81
3. व्ही पृ. सं. 81 श्लोक 280
4. सं. र, रा अ, पृ. 2 कल्लि टीका
5. बृह वृत्ति श्लोक 321 भरत अनुसार
6. श्रागो के विषय में विवेचन हेतु द्रवरण्य द्वितीय अध्याय
7. संगीत दर्पण, रा. आ. पृ. सं. 73
8. बृह पृ. 2 श्लोक 16,17, 18
9. रागविबोध, चतुर्थ विवके पृ. सं. 118

10. सं. सं. भाग पृ. सं. 152 प्रकरण 6 श्लोक 3
11. अनूप संगीत विकास पृ. सं. 63
12. नां. शा. अ. 29 श्लो0 45 पृ. 92
13. भं भां. चतुर्थ श्रुत्यहयाय पृ.120 खण्ड 12 श्लोक 65